फोटो: हरकारा मीडिया

मैं, मेरा घर, गाँव, स्कूल और किताबें

मुकेश मालवीय

मैं मध्यप्रदेश के एक सरकारी स्कूल की प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाता हूँ। इस स्कूल में आने वाले अधिकांश बच्चों की बोलचाल की भाषा गोण्डी है। पढ़ने-लिखने की भाषा हिन्दी के अनुप्रयोग के लिए मैंने अपने स्कूल में बाल-पुस्तकालय की लगभग पचास किताबों को बच्चों के बीच लोकप्रिय

बनाने के लिए कुछ गतिविधियाँ अपनाईं। इन किताबों से बच्चों ने हिन्दी में बोलना-पढ़ना तो सीखा ही साथ ही ये उनके अनुभव संसार को विस्तृत करने का उपयोगी साधन भी बनीं। मेरा मानना है कि स्कूली स्तर पर भाषा शिक्षण केवल पढ़ने-लिखने की तकनीक सिखाना ही नहीं है बल्कि बच्चों को विभिन्न स्तर की मौखिक एवं लिखित भाषाई अभिव्यक्ति से परिचय के मौके देना भी है ताकि बच्चे नए शब्दों और वाक्यों के नए ढाँचों को समझकर इनका इस्तेमाल खुद की मौखिक एवं लिखित अभिव्यक्ति में कर पाएँ। मेरी इस समझ को क्रियान्वित करने में किताबों ने अहम भूमिका निभाई। बाल-पुस्तकालय के क्रियान्वयन की बातों से पहले किताबें मेरे अनुभव संसार में किस तरह व्याप्त हैं, इस पर कुछ बात कर लें।

मैं और किताबें

मैंने अपने स्कूल और कॉलेज की पाठ्य पुस्तकें आगे की कक्षा में जा चुके साथियों से खरीदकर पढ़ी थीं। लगभग सौ घरों के मेरे छोटे-से गाँव में सिर्फ माध्यमिक विद्यालय था। अपने साथियों के साथ मैं भी मिडिल स्कूल में तकनीकी रूप से हिन्दी पढ़ने लग गया था।

उस दौरान पाठ्य पुस्तकों के अलावा जो किताबें मुझे पढ़ने को मिलीं उनमें शायद सबसे पहली रामायण थी। उस समय हमारे गाँव में हर महीने मन्दिर में सामूहिक रामायण पढ़ने का आयोजन होता था। मात्राओं की गलती करते हुए हम बच्चे भी बड़ों के साथ रामायण पढ़ते। रामायण की लय और बड़े लोगों की तेज़ आवाज़ में हमारी गलती कभी छिपती तो कभी उजागर हो जाती। मिलकर पढ़ने की इस प्रक्रिया से मेरे अन्दर पढ़ने का आत्मविश्वास तो आ गया पर पढ़कर अर्थ समझना मुझे अन्य किताबों से ही आया।

मेरे पड़ोस के एक दादाजी सत्यकथा, मनोहर कहानियाँ, सरिता आदि किताबें पढ़ा करते थे। दादाजी के यहाँ मैं अक्सर जाया करता था, उनकी बिटिया मेरे साथ पढ़ती थी। इन किताबों को देखते-पलटते मैं धीरे-धीरे इन्हें पढ़ने लगा। इन कहानियों और घटनाओं में वास्तविक समाज में होने वाले अपराधों का शाब्दिक चित्रण होता था। मैं इसे चित्रण इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि इन घटनाओं को लिखने की शैली ऐसी होती है कि पाठक के दिमाग में घटना दृश्य की तरह घटित होने लगती है। चित्र या दृश्य के साथ तो यह सुविधा होती है कि वह हर स्तर के दर्शक को उसकी परिपक्वता के अनुसार अर्थ सम्प्रेषित करते हैं। उसी तरह इन कहानियों ने मेरी उम्र के स्तरानुरूप मुझे कुछ अर्थ दिए। यह सब पढ़ते हुए बहुत-से शब्दों से पहली बार मेरा परिचय हुआ और घटनाओं के सन्दर्भ में उन शब्दों के अर्थ का अनुमान लगाना मैंने सीखा। जैसे रिवॉल्वर

शब्द को मैं कई सालों तक रिलव्वर पढ़ता रहा पर उसका अर्थ मेरे लिए पिस्तौल ही था। इन कहानियों को पढ़ते हुए बहुत सारे शब्दों और वाक्यों के नए ढाँचे मेरी स्थाई स्मृति में आने लगे और मैं गाहे-बगाहे इनका उपयोग अपनी अभिव्यक्ति में करने लगा था। हाँ, इस सब में बहुत कुछ ऐसा था जो मेरी अवयस्कता के लिए सही नहीं था, पर इससे पढ़ने की वयस्कता तो मुझमें आ ही गई। फिर, आगे की कक्षाओं के दौरान उसी स्रोत से गुलशन नन्दा, सुरेन्द्रमोहन पाठक, वेदप्रकाश शर्मा आदि लेखकों के कुछ सामाजिक एवं थ्रिलर उपन्यास पढ़ने में मेरी रुचि जागृत हुई। पर यह सब मुझे डाँट-खाकर या चोरी-छुपे करना पड़ता था। बाद में, इन उपन्यासों के साथ-साथ डायमंड पॉकेट बुक्स के सस्ते, उत्कृष्ट साहित्य एवं धर्मयुग भी पढ़ने को मिले।

शिक्षक बनने के बाद मैं एक स्वैच्छिक शैक्षिक संस्था एकलव्य के सम्पर्क में आया जहाँ एक बड़ा पुस्तकालय और पढ़ने-लिखने की व्यवस्था थी। यहाँ मैंने बहुत-से साहित्यकारों को पढ़ा जिनमें निराला, टैगोर, प्रेमचंद, मंटो, इस्मत चुगताई, राजेन्द्र यादव, श्रीलाल शुक्ल, मन्नु भंडारी आदि थे। कुछ विदेशी लेखकों जैसे - टॉलस्टाय, गोर्की, लेनिन, मार्क्स आदि को पढ़ते हुए वैचारिक एवं दर्शनशास्त्रीय साहित्य की ओर रुझान हुआ। साथ ही अपने काम के सन्दर्भ में कुछ शिक्षा शास्त्रियों जैसे - पियाजे, सिलविया एशटन वॉर्नर, ए.एस. नील, गीजू भाई, कृष्णकुमार आदि के विचारों और अनुभवों को पढ़ सका।

इस तरह पढ़ना एक आदत बन गई। बचपन में जिन किताबों से पढ़ने की नींव पड़ी वे अच्छी नहीं थीं पर यदि वो माहौल नहीं मिलता तो अच्छी किताबों से मैं शायद ही जुड़ पाता।

मेरा घर, गाँव और किताबें

पढ़ने की आदत किताब खरीदने को भी प्रेरित करती है। मेरे घर पर लगभग 500 से अधिक किताबों का संग्रह है जो दोस्तों, मेहमानों और बच्चों को आकर्षित करता है। हम उदारता से इनका लेन-देन करते हैं। घर के सदस्यों पर भी इन किताबों ने अपना असर छोड़ा है वहीं उनकी रुचि के अनुरूप भी मुझे कुछ किताबें लानी होती हैं जैसे पिताजी के लिए धर्म, आध्यात्म और स्वास्थ्य सम्बन्धी किताबें, बच्चों के लिए कहानियों, कविताओं और माथापच्ची की किताबें। हंस, चकमक, संदर्भ, स्रोत जैसी पत्रिकाएँ पिछले 15 वर्षों से घर पर आ रहीं हैं और घर के सभी सदस्यों के लिए इनमें कुछ-न-कुछ होता है।

शुरुआत में, मेरे गाँव में सिर्फ मेरे पास एक अखबार आता था। उस गाँव में एकमात्र छोटी-सी दुकान थी जिस पर हमेशा चार-छह लोग बैठे रहते थे। खुद पढ़ने के बाद मैं इस अखबार को दुकान पर दे देता था

जहाँ इसे दिनभर पढ़ा जाता था। फिर दुकान पर अलग अखबार आने लगा। आज इस गाँव में 13 अखबार आ रहे हैं।

मेरा स्कूल और किताबें

मैं जिस प्राथमिक स्कूल में पढ़ाता हूँ वहाँ मुख्यतः आदिवासी बच्चे पढ़ते हैं। यहाँ कुछ साल पहले मुझे अलमारी में बन्द 50 किताबें मिलीं। इनमें नजानू की कहानियाँ, नन्हा राजकुमार, हायवरल, आज स्कूल नहीं जाऊँगा जैसी रोचक और मज़ेदार किताबें थीं। इन किताबों को मैंने पढ़ना शुरू किया। पर पढ़ते समय बच्चों का शोरगुल होने के कारण मैंने इन कहानियों को बच्चों के बीच ज़ोर से पढ़ना शुरू किया। इस तरह बच्चों को भी कहानी सुनने को मिल जाती और मेरा पढ़ना भी हो जाता। हाँ, मुझे पढ़ते समय अपनी आवाज़ में थोड़ा हाव-भाव तथा कहानी के अनुरूप उतार-चढ़ाव लाना पड़ता। जब हमने इस तरह कुछ किताबें पढ़ लीं तो बच्चे मुझसे रोज़ ही इन किताबों को पढ़ने का आग्रह करने लगे। मुझे कुछ दूसरा काम करना हो तब भी यह मांग हर थोड़ी देर में उठती रहती।

कुछ दिनों बाद अपनी व्यस्तता के कारण मैंने इन किताबों को बच्चों के बीच ही रखने की व्यवस्था बना दी। एक डलिया में इन किताबों को भरकर कक्षा में रख दिया जाता था। कुछ किताबों को कक्षा की दीवार पर भी टाँग दिया जाता। किताबें बच्चों की पहुँच में होने से वे इन्हें उठाने, पलटने और इन पर बातचीत करने लगे। उनके बीच इन किताबों के चित्रों पर, नाम पर, तो कभी कहानी पर बातचीत होती। मैंने पहले कभी कृष्णकुमार जी की किताब 'बच्चे की भाषा और अध्यापक' पढ़ी थी। इसमें उन्होंने क्रियात्मक चित्रों पर पाँच तरह की बातचीत – ढूँढ़ना, तर्क करना, आरोपण, भविष्यवाणी, सम्बन्ध बैठाना – की सम्भावना बताई है। बच्चों को किताबों के चित्रों पर बातचीत करते देख मैंने उनकी बातों को इन बिन्दुओं की ओर मोड़ने की कोशिश भी की।

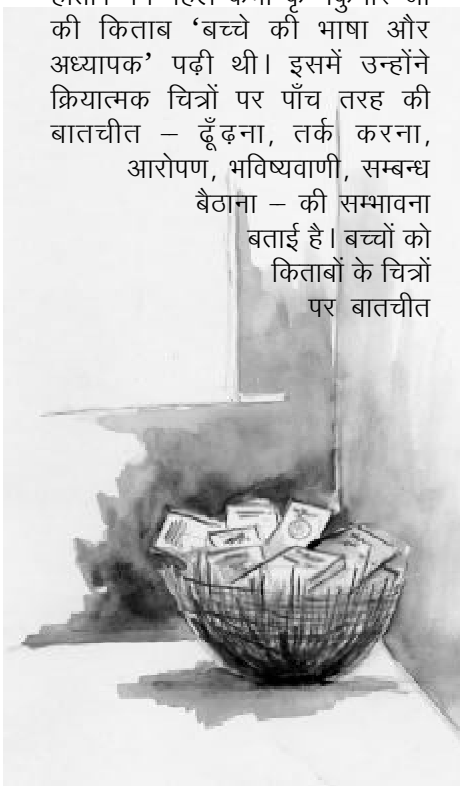

कभी-कभी, जिन कहानियों को मैं बच्चों को सुना चुका था वही कहानियाँ फिर बच्चे सुनाते। कोई एक उस कहानी को शुरू करता और कहानी में जो बातें छूट जातीं वे बच्चे मिल-जुलकर पूरी करते। पढ़ने की कोशिश करते हुए वे अभिनय और अनुमान का सहारा लेते और एक-दूसरे की मदद से पढ़ते। इस अनुमान लगाने की प्रक्रिया को और तार्किक बनाने के लिए हमने कुछ गतिविधियाँ कीं जैसे, किसी सतत् वाक्य के बीच का कोई शब्द छोड़ दिया जाता और उस खाली स्थान में उपयुक्त शब्द भरने को कहा जाता या कहानियों के क्रम को समझकर आगे की घटना का अनुमान लगाना।

बच्चों को किताबें घर ले जाने और लाने की स्वत्रंता भी दी गई ताकि बच्चे उन्हें ज़्यादा आज़ादी के साथ इस्तेमाल कर सकें।

इस तरह बिना किसी दबाव के बच्चे इन किताबों से जुड़ पाए और इनका इस्तेमाल किया। आज इस स्कूल में लगभग 300 किताबें हैं जो अलमारी के बाहर, बच्चों की पहुँच में हैं और जो बच्चों की अपनी हैं।

मुकेश मालवीयः शासकीय माध्यमिक शाला, पहावाड़ी में शिक्षक हैं।

सभी चित्र - जितेन्द्र ठाकुर - एकलव्य, भोपाल में डिज़ाइन एवं प्रोडक्शन इकाई में कार्यरत।